# मूलाचार : एक विवेचन

**मूलाचार का महत्त्व**

मूलाचार को वर्तमान में दिगम्बर जैन परम्परा में आगम स्थानीय ग्रन्थ के रूप में मान्य किया जाता है। यह ग्रन्थ मुख्यत: अचेल परम्परा के साधु-साध्वियों के आचार से सम्बन्धित है। यह भी निर्विवाद सत्य है कि दिगम्बर परम्परा में इस ग्रन्थ का उतना ही महत्त्व है जितना कि श्वेताम्बर परम्परा में आचारांग का। यही कारण है कि धवला और जयधवला (दसवीं शताब्दी) में इसकी गाथाओं को आचारांग की गाथा कहकर उद्धृत किया गया है। यह स्पष्ट है कि दिगम्बर परम्परा में जब आचारांग को लुप्त मान लिया गया, तो उसके स्थान पर मूलाचार को ही आचारांग के रूप में देखा जाने लगा। वस्तुत: आचारांग के प्राचीनतम अंश प्रथम श्रुतस्कन्ध में अचेलता का प्रतिपादन होते हुए भी मुनि के वस्त्र-ग्रहण सम्बन्धी कुछ उल्लेख, फिर चाहे वे आपवादिक स्थिति के क्यों न हो, पाये ही जाते हैं। यही कारण था कि अचेलकत्व पर अत्यधिक बल देने वाली यापनीय एवं दिगम्बर परम्परा उसे अपने सम्प्रदाय में मान्य न रख सकी और उसके स्थान पर मूलाचार को ही अपनी परम्परा का मुनि आचार सम्बन्धी ग्रन्थ मान लिया।

**मूलाचार के आधार ग्रन्थ**

आर्यिका ज्ञानमती जी ने भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित मूलाचार की भूमिका में यह लिखा है कि आचारांग के आधार पर चौदह सौ गाथाओं में ग्रन्थकर्त्ता ने इस ग्रन्थ की रचना की;[1] किन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि यह ग्रन्थ आचारांग और विशेष रूप से उसके प्राचीनतम अंश प्रथम श्रुतस्कन्ध के आधार पर तो बिल्कुल ही नहीं लिखा गया है। जिन ग्रन्थों के आधार पर मूलाचार की रचना हुई है वे श्वेताम्बर परम्परा के मान्य बृहद्प्रत्याख्यान, आतुरप्रत्याख्यान, आवश्यकनिर्युक्ति, जीवसमास आदि हैं जिनकी सैकड़ों गाथाएँ शौरसेनी रूपान्तरण के साथ इसमें गृहीत की गई हैं। वस्तुत: मूलाचार श्वेताम्बर परम्परा में मान्य निर्युक्तियों एवं प्रकीर्णकों की विषयवस्तु एवं सामाग्री से निर्मित है।

**मूलाचार की परम्परा**

यद्यपि हमें स्पष्ट रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि यह ग्रन्थ श्वेताम्बर परम्परा का ग्रन्थ नहीं माना जाना चाहिए क्योंकि इसमें मुनि के अचेलकत्व पर जितना अधिक बल दिया गया है उतना श्वेताम्बर परम्परा के आचारांग को छोड़कर किसी भी आचारपरक ग्रन्थ में नहीं मिलता। इसे श्वेताम्बर परम्परा का ग्रन्थ मानने में दूसरी कठिनाई यह है कि इसकी भाषा न तो अर्धमागधी है और न महाराष्ट्री प्राकृत ही; वस्तुत: इसमें अर्धमागधी और महाराष्ट्री प्राकृत में रचित श्वेताम्बर आगम ग्रन्थों की सैकड़ों गाथाएँ शौरसेनी रूपान्तरण में मिलती हैं। किन्तु इस आधार पर इसे श्वेताम्बर परम्परा का ग्रन्थ नहीं कह सकते क्योंकि अभी तक श्वेताम्बर परम्परा का कोई भी ग्रन्थ शौरसेनी प्राकृत में लिखा गया हो, यह ज्ञात नहीं होता। यह सत्य है कि शौरसेनी प्राकृत में लेखन कार्य मुख्यत: अचेल परम्परा में ही हुआ है।

किन्तु इसमें कुछ ऐसे भी तथ्य हैं, जिनके आधार पर यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह दिगम्बर परम्परा का ग्रन्थ है। सर्वप्रथम तो इसमें आर्यिका को श्रमण के समकक्ष मानकर उसकी मुक्ति का जो विधान किया गया है वह इसे दिगम्बर ग्रन्थ मानने में बाधा उत्पन्न करता है। दिगम्बर परम्परा के बहुश्रुत विद्वान् पं० नाथूराम प्रेमी ने अनेक तर्कों के आधार पर कहा है कि यह दिगम्बर परम्परा का ग्रन्थ नहीं है। अत: यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होता है कि यदि मूलाचार श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों में से किसी परम्परा का ग्रन्थ नहीं है तो फिर किस परम्परा का ग्रन्थ है? यह स्पष्टत: सत्य है कि यह ग्रन्थ अचेलकता आदि के सम्बन्ध में दिगम्बर परम्परा के निकट है किन्तु स्त्री-दीक्षा, स्त्री-मुक्ति, आगमों का मान्य करने आदि कुछ बातों में श्वेताम्बर परम्परा से भी समानता रखता है। इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि यह ग्रन्थ एक ऐसी परम्परा का ग्रन्थ है जो कुछ रूप में श्वेताम्बरों और कुछ रूप में दिगम्बरों से समानता रखती थी। डॉ०उपाध्ये, पं० नाथूराम प्रेमी के लेखों एवं प्राचीन भारतीय अभिलेखीय तथा साहित्यिक साक्ष्यों के अध्ययन से अब यह स्पष्ट हो गया है कि श्वेताम्बर और दिगम्बरों के बीच एक योजक सेतु का काम करने वाली 'यापनीय' नाम की एक तीसरी परम्परा भी थी। हम पूर्व में यह स्पष्ट कर चुके हैं कि यापनीय परम्परा जहाँ अचेलकत्व पर बल देने के कारण दिगम्बर परम्परा के निकट थी, वहीं स्त्रीमुक्ति, केवलीभुक्ति और आगमों की उपस्थिति, आपवादिक रूप में वस्त्र एवं पात्र व्यवहार आदि से श्वेताम्बर परम्परा के निकट थी। मूलाचार की रचना इसी परम्परा में हुई है। आाइए इस सम्बन्ध में कुछ अधिक विस्तार से चर्चा करें—

**मूलाचार : यापनीय परम्परा का ग्रन्थ**

बहुश्रुत दिगम्बर विद्वान् पं० नाथूराम जी 'प्रेमी' ने इसे यापनीय परम्परा का ग्रन्थ माना है, इस सम्बन्ध में वे लिखते हैं[2] —

"मुझे ऐसा लगता है कि यह ग्रन्थ कुन्दकुन्द का तो नहीं ही है, उनकी विचार परम्परा का भी नहीं है, बल्कि यह उस परम्परा का जान पड़ता है जिसमें शिवार्य और अपराजित हुए हैं। कुछ बारीकी से अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है"—

१. मूलाचार और भगवती आराधना की पचासों गाथाएँ एक सी और समान अभिप्राय प्रकट करने वाली हैं।

२. मूलाचार की 'आचेलक्कुद्देसिय' आदि ९०९वीं गाथा भगवती आराधना की ४२१वीं गाथा है। इसमें दस कल्पों के नाम हैं। जीतकल्पभाष्य की १९७२वीं गाथा भी यही है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अन्य टीकाग्रन्थों और निर्युक्तियों में भी यह है। प्रमेयकमलमार्तण्ड

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के 'स्त्रीमुक्तिविचार' में प्रभाचन्द्र ने दस कल्पों की मान्यता का उल्लेख श्वेताम्बर सिद्धान्त के रूप में किया है।

३. मूलाचार की 'सेज्जोगासणिसेज्जा' आदि ३९१वीं गाथा और आराधना की ३०५वीं गाथा एक ही है। इसमें कहा है कि वैयावृत्ति करने वाला मुनि रुग्ण मुनि का आहार, औषधि आदि से उपकार करें। इसी गाथा के विषय में कवि वृन्दावनदास को शंका हुई थी और उसका निवारण करने के लिए उन्होंने दीवान अमरचन्दजी को पत्र लिखा था। समाचार अधिकार 'गच्छे वेज्जावच्चं' आदि १७४वीं गाथा की टीका में भी वैयावृत्ति का अर्थ शारीरिक प्रवृत्ति और आहारादि से उपकार करना लिखा है—'वेज्जावच्चं वैयावृत्यं कायिकव्यापाराहारादिभिरुपग्रहणम्।'

४. भगवती आराधना की ४१४वीं गाथा के समान इसकी भी ३८७वीं गाथा[३] में आचारकल्प एवं जीतकल्प ग्रन्थों का उल्लेख है, जो यापनीय को मान्य थे और श्वेताम्बर परम्परा में आज भी उपलब्ध हैं।

५. गाथा २७७-७८-७९ में कहा है कि संयमी मुनि और आर्यिकाओं की चार प्रकार के सूत्र कालशुद्धि आदि के बिना नहीं पढ़ना चाहिए। इनसे अन्य आराधना, निर्युक्ति मरणविभक्ति, संग्रह, स्तुति, प्रत्याख्यान, आवश्यक और धर्मकथा आदि पढ़ना चाहिए।[४] ये सब ग्रन्थ मूलाचार के कर्त्ता के समक्ष थे, परन्तु कुन्दकुन्द की परम्परा के साहित्य में इन नामों के ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं।

६. मूलाचार 'बावीसं तित्थयरा'[५] और 'सपडिक्कमणो धम्मो'[६] इन दो गाथाओं में जो कुछ कहा गया है, वह कुन्दकुन्द की परम्परा में अन्यत्र कहीं नहीं कहा गया है। ये ही दो गाथाएँ भद्रबाहुकृत आवश्यकनिर्युक्ति में हैं और वह श्वेताम्बर ग्रन्थ है।

७. आवश्यकनिर्युक्ति की लगभग ८० गाथाएँ मूलाचार में मिलती हैं[७] और मूलाचार में प्रत्येक आवश्यक का कथन करते समय वट्टकेर का यह कहना कि मैं प्रस्तुत आवश्यक पर समास से (संक्षेप में) निर्युक्ति कहूँगा,[८] अवश्य ही अर्थसूचक है क्योंकि सम्पूर्ण मूलाचार में 'षडावश्यक अधिकार' को छोड़कर अन्य प्रकरणों में 'निर्युक्ति' शब्द शायद ही कहीं आया हो। षडावश्यक के अन्त में भी इस अध्याय को 'निर्युक्ति' नाम से ही निर्दिष्ट किया गया है।[९]

८. मूलाचार में मुनियों के लिए 'विरत' और आर्यिकाओं के लिए 'विरती' शब्द का उपयोग किया गया है। (गाथा १८०)। मुनि-आर्यिका, श्रावक-श्राविका मिलकर चतुर्विध संघ होता है। चौथे सामाचार अधिकार (गाथा १८७) में कहा है कि अभी तक कहा हुआ, यह यथाख्यातपूर्व समाचार आर्यिकाओं के लिए भी यथायोग्य जानना[१०]। इसका अर्थ यह हुआ कि ग्रन्थ कर्त्ता मुनियों और आर्यिकाओं को एक ही श्रेणी में रखते हैं (जबकि आ० कुन्दकुन्द स्त्री-प्रव्रज्या का निषेध करते हैं।[११] फिर १६६वीं गाथा में कहा है कि इस प्रकार की चर्चा जो मुनि और आर्यिकायें करती हैं वे जगत्पूजा, कीर्ति और सुख प्राप्त करके 'सिद्ध' होती हैं[१२]। १८४वीं गाथा में कहा है कि आर्यिकाओं का गणधर गम्भीर दुर्धर्ष, अल्पकौतूहल, चिरप्रव्रजित और गृहीतार्थ होना चाहिए। इससे जान पड़ता है कि आर्यिकाएँ मुनिसंघ के ही अन्तर्गत हैं और उनका गणधर मुनि ही होता है। 'गणधरो मर्यादोपदेशक: प्रतिक्रमणाद्याचार्य:' (टीका)।

इन सब बातों से मूलाचार कुन्दकुन्द परम्परा का ग्रन्थ नहीं मालूम होता। अत: मूलाचार यापनीय परम्परा का ग्रन्थ है यह निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मूलाचार को यापनीय परम्परा का ग्रन्थ मानने के अनेक प्रमाण हैं। पं० नाथूराम जी प्रेमी ने अपने उपर्युक्त विवेचन में उन सभी तथ्यों का संक्षेप में उल्लेख कर दिया है जिनके आधार पर मूलाचार को कुन्दकुन्द की अचेल-परम्परा के स्थान पर यापनीयों की अचेल-परम्परा का ग्रन्थ माना जाना चाहिए। मैं पं० नाथूराम जी प्रेमी द्वारा उठाये गये इन्हीं मुद्दों पर विस्तार से चर्चा करना चाहूँगा।

सर्वप्रथम मूलाचार और भगवती आराधना की अनेक गाथाएँ समान और समान अभिप्राय को प्रकट करने वाली होने के कारण प्रेमी जी ने इसे भगवतीआराधना की परम्परा का ग्रन्थ माना है। प्रेमी जी ने इस तथ्य का भी संकेत किया है कि मूलाचार के समान ही भगवती आराधना के भी कुछ ऐसे मन्तव्य हैं जो अचेल दिगम्बर परम्परा से मेल नहीं खाते हैं और यदि भगवती आराधना दिगम्बर परम्परा का ग्रन्थ न होकर यापनीय परम्परा का ग्रन्थ सिद्ध होता है तो फिर मूलाचार को भी हमें यापनीय परम्परा का ही ग्रन्थ मानना होगा। यद्यपि प्रेमी जी ने मात्र भगवती आराधना से इसकी गाथाओं की समरूपता की चर्चा की है। परन्तु बात यहीं समाप्त नहीं होती। मूलाचार में श्वेताम्बर परम्परा में मान्य अनेक ग्रन्थों की गाथाएँ समान रूप से उपलब्ध होती हैं। उनमें शौरसेनी और अर्धमागधी अथवा महाराष्ट्री के अन्तर के अतिरिक्त कहीं किसी प्रकार का अन्तर भी नहीं है। मूलाचार के बृहद् प्रत्याख्यान नामक द्वितीय अधिकार में अधिकांश गाथाएँ महापच्चक्खान और आउरपच्चक्खान से मिलती हैं। मूलाचार के बृहद् प्रत्याख्यान और संक्षिप्त प्रत्याख्यान इन दोनों अधिकारों में क्रमश: ७१ और १४ गाथाएँ अर्थात् कुल ८५ गाथाएँ हैं। इनमें से ७० गाथाएँ तो आतुर प्रत्याख्यान नामक श्वेताम्बर परम्परा के प्रकीर्णक से मिलती हैं। शेष १५ गाथाओं में भी कुछ महापच्चक्खान एवं चन्द्रवेध्यक में मिल जाती हैं। ये गाथाएँ श्वेताम्बर परम्परा में प्रकीर्णकों के रूप में आज भी स्वीकार्य हैं। पुन: अध्याय का नामकरण भी उन्हीं ग्रन्थों के आधार पर है। इसी प्रकार मूलाचार के षडावश्यक अधिकार की १९२ गाथाओं में से ८० गाथाएँ आवश्यकनिर्युक्ति से समानरूप रखती हैं। इसके अतिरिक्त इसी अधिकार पाठभेद के साथ उत्तराध्ययन, अनुयोगद्वार और दशवैकालिक से अनेक गाथाएँ मिलती हैं। पंचाचार अधिकार में सबसे अधिक २२२ गाथाएँ हैं। इसकी ५० से अधिक गाथाएँ उत्तराध्ययन और जीवसमास नामक श्वेताम्बर ग्रन्थ में समान रूप से पायी जाती हैं। इसमें जो षड्जीवनिकाय का विवेचन है उसकी अधिकांश गाथाएँ उत्तराध्ययन के ३६वें अध्याय और जीवसमास में हैं। इसी प्रकार ५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समिति,३ गुप्ति आदि का जो विवेचन उपलब्ध होता है वह भी उत्तराध्ययन के और दशवैकालिक में किंचित् भेद के साथ उपलब्ध होता है। इसी प्रकार मूलाचार के पिण्डशुद्धि अधिकार की ८३ गाथाएँ हैं। इनमें भी अधिकांश गाथाएँ श्वेताम्बर परम्परा के पिण्डनिर्युक्ति नामक ग्रन्थ में यथावत् रूप में उपलब्ध होती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मूलाचार की अधिकांश सामग्री श्वेताम्बर परम्परा के उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, पिण्डनिर्युक्ति, आउरपच्चक्खाण महापच्चक्खाण, आवश्यकनिर्युक्ति, चन्द्रवेध्यक आदि श्वेताम्बर परम्परा के मान्य उपर्युक्त ग्रन्थों से संकलित हैं। आश्चर्य तो यह लगता है कि हमारी दिगम्बर परम्परा के विद्वान् मूलाचार में कुन्दकुन्द के ग्रन्थों से मात्र २१ गाथाएँ समान रूप से उपलब्ध होने पर इसे कुन्दकुन्द की कृति सिद्ध करने का साहस करते हैं और जिस परम्परा के ग्रन्थों से इसकी आधी से अधिक गाथाएँ समान रूप से मिलती हैं उसके साथ इसकी निकटता को दृष्टि से ओझल कर देते हैं। मूलाचार की रचना उसी परम्परा में सम्भव हो सकती है जिस परम्परा में उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, आवश्यकनिर्युक्ति, पिण्डनिर्युक्ति, महापचक्खाण, आउरपचक्खाण आदि ग्रन्थों के अध्ययन-अध्यापन की परम्परा रही है। वर्तमान की खोजों से यह स्पष्ट हो चुका है कि यापनीय परम्परा से इन ग्रन्थों का अध्ययन होता था। इसी प्रकार यापनीय परम्परा में अपराजितसूरि ने उत्तराध्ययन और दशवैकालिक पर टीकाएं लिखकर इसी बात की पुष्टि की है कि इसका अध्ययन और अध्यापन उनकी परम्परा में प्रचलित था। जो परम्परा आगम ग्रन्थों का सर्वथा लोप मानती है उस परम्परा में मूलाचार जैसे ग्रन्थ की रचना सम्भव नहीं प्रतीत होती। यह स्पष्ट है कि जहाँ दक्षिण भारत में विकसित दिगम्बर अचेल परम्परा आगमों के विच्छेद की बात कर रही थी, वहीं उत्तरभारत में विकसित होकर दक्षिण की ओर जाने वाली इस यापनीय-परम्परा में आगमों का अध्ययन बराबर चल रहा था। अत: इससे यही सिद्ध होता है कि मूलाचार की रचना कुन्दकुन्द की दिगम्बर परम्परा में न होकर यापनीयों की अचेल परम्परा में हुई है।

स्वयं मूलाचार के पाँचवें पंचाचार नामक अधिकार की ७९वीं गाथा में[१३] और ३८७ न० गाथा में[१४] आचारकल्प, जीतकल्प, आवश्यकनिर्युक्ति, आराधना, मरणविभक्ति, पच्चक्खाण, आवश्यक, धर्मकथा (ज्ञाताधर्मकथा) आदि ग्रन्थों के अध्ययन के स्पष्ट निर्देश हैं। मेरी दृष्टि से उक्त गाथाओं में निम्न ग्रन्थों का निर्देश होता है—(१) आराधना, (२) निर्युक्ति, (३) मरणविभक्ति, (४) संग्रह (पंचसंग्रह), (५) स्तुति (देविन्दत्थुई), (६) प्रत्याख्यान, (७) आवश्यक और (८) धर्मकथा।

सर्वप्रथम यह विचारणीय है कि इन ग्रन्थों में कौन-कौन से ग्रन्थ श्वेताम्बर परम्परा में मान्य एवं उपलब्ध हैं और कौन-कौन से दिगम्बर परम्परा में मान्य एवं उपलब्ध हैं। इन ग्रन्थों में सर्वप्रथम आराधना का नाम है। आराधना के नाम से सुपरिचित ग्रन्थ शिवार्य का भगवती आराधना या मूलाराधना है। यह सुस्पष्ट है कि भगवती आराधना मूलत: दिगम्बर परम्परा का ग्रन्थ न होकर यापनीय संघ का ग्रन्थ है। मूलाचार में जिस आराधना का निर्देश किया गया है, वह भगवती आराधना ही है। मूलाचार भी उसी यापनीय परम्परा का ग्रन्थ प्रतीत होता है क्योंकि मूलाचार के रचनाकार ने सर्वप्रथम उसी ग्रन्थ का नामोल्लेख किया है। दिगम्बर परम्परा में आराधना नाम का कोई ग्रन्थ नहीं है। यद्यपि श्वेताम्बर परम्परा में मरणविभक्ति नाम का जो ग्रन्थ है उसकी रचना जिन आठ प्राचीन श्रुत ग्रन्थों के आधार पर मानी जाती है उनमें मरणविभक्ति, मरणविशोधि, मरणसमाधि, संलेखनाश्रुत, भत्तपरिज्ञा, आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान और आराधना हैं। प्रस्तुत गाथा में मरणविभक्ति, प्रत्याख्यान और आराधना ऐसे तीन स्वतन्त्र ग्रन्थों के उल्लेख हैं। यह सम्भव है कि मूलाचार का आराधना से तात्पर्य इसी प्राचीन आराधना से रहा होगा। यह आराधना भगवती आराधना की रचना का भी आधार रहा है। यदि हम आराधना का तात्पर्य भगवती आराधना लेते हैं तो हमें इतना निश्चित रूप से स्वीकार करना होगा कि मूलाचार का रचनाकाल भगवती आराधना की रचना के बाद का है और दोनों ग्रन्थों के आन्तरिक साक्ष्यों के आधार पर यह निर्णय करना होगा कि इनमें से कौन प्राचीन है। चूँकि यह एक स्वतन्त्र निबन्ध का विषय होगा इसलिए इसकी अधिक गहराई में नहीं जाना चाहता, किन्तु इतना अवश्य उल्लेख करूँगा कि यदि भगवती आराधना की रचना मूलाचार से परवर्ती है तो मूलाचार में लिखित यह आराधना, मरणसमाधि की अंगीभूत आराधना ही है। दोनों का नाम साम्य भी इस धारणा को पुष्ट करता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि किसी समय आराधना स्वतन्त्र ग्रन्थ था, जो आज मरणविभक्ति में समाहित हो गया है।

श्वेताम्बर परम्परा में आगम ग्रन्थों की प्राचीनतम व्याख्याओं के रूप में निर्युक्तियाँ लिखी गईं। श्वेताम्बर परम्परा में दस निर्युक्तियाँ सुप्रसिद्ध हैं। निर्युक्ति सम्भवत: द्वितीय भद्रबाहु की रचना मानी जाती है, किन्तु कुछ निर्युक्तियाँ उससे भी प्राचीन हैं। यह भी सुस्पष्ट है कि मूलाचार के षडावश्यक अधिकार में आवश्यकनिर्युक्ति की ८० से अधिक गाथाएँ स्पष्टत: मिलती हैं। अत: यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत गाथा में निर्युक्ति का जो उल्लेख है वह श्वेताम्बर परम्परा में उपलब्ध निर्युक्तियों से ही है। यह भी स्पष्ट है कि अधिकांश निर्युक्तियाँ भद्रबाहु द्वितीय के द्वारा रचित हैं और इन भद्रबाहु का समय विक्रम की पाँचवीं शताब्दी है। इसमें एक बात अवश्य स्पष्ट होती है कि मूलाचार विक्रम की छठी शताब्दी के पूर्व की रचना नहीं है।

मूलाचारकार यह कहकर 'अब मैं आचार्य परम्परा से यथागत आवश्यक निर्युक्ति को संक्षेप में कहूँगा' इस तथ्य की स्वयं पुष्टि करता है कि उसके समक्ष आवश्यकनिर्युक्ति नामक ग्रन्थ रहा है। दूसरे अस्वाध्याय काल में पढ़ने योग्य ग्रन्थों की सूची में निर्युक्ति का उल्लेख भी इसी तथ्य को सूचित करता है। दिगम्बर परम्परा में निर्युक्तियाँ लिखी गईं ऐसा कोई भी संकेत उपलब्ध नहीं है, अत: मूलाचार में निर्युक्ति से तात्पर्य श्वेताम्बर परम्परा में प्रचलित निर्युक्तयों से ही है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि श्वेताम्बर और यापनीय आगमिक ग्रन्थ एक ही थे, उनमें मात्र शौरसेनी और महाराष्ट्री का भाषा-भेद था। मूलाचार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में जिस तीसरे ग्रन्थ मरणविभक्ति का उल्लेख हुआ है वह भी श्वेताम्बर परम्परा के दस प्रकीर्णकों में एक है। यह मरणविभक्ति और मरणसमाधि इन दो नामों से उल्लिखित है। स्वयं ग्रन्थकार ने भी इसे मरणविभक्ति कहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि मूलाचार द्वारा निर्दिष्ट मरणविभक्ति श्वेताम्बर परम्परा में उपलब्ध मरणविभक्ति ही है। दिगम्बर परम्परा में मरणविभक्ति नाम का कोई ग्रन्थ रहा हो ऐसा उल्लेख मुझे देखने को नहीं मिला है। यद्यपि मूलाचार में उल्लिखित मरणविभक्ति वर्तमान मरणविभक्ति का एक भाग मात्र थी- क्योंकि वर्तमान मरणविभक्ति सहित आठ प्राचीन ग्रन्थों का संकलन है।

जिस चौथे ग्रन्थ का उल्लेख हमें मूलाचार में मिलता है, वह संग्रह है। संग्रह से ग्रन्थकार का क्या तात्पर्य है, यह विचारणीय है। पंच-संग्रह के नाम से कर्मसाहित्य सम्बन्धी ग्रन्थ श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों ही परम्पराओं में उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त दिगम्बर परम्परा में पंचास्तिकाय को भी 'पंचत्थिकाय-संगहसुत्त' कहा गया है। स्वयं इस ग्रन्थ के कर्त्ता ने भी इस ग्रन्थ को संग्रह कहा है अत: एक विकल्प तो यह हो सकता है कि संग्रह से तात्पर्य 'पंचत्थिकाय संगह' से हो, किन्तु यही एकमात्र विकल्प हो हम यह नहीं कह सकते, क्योंकि अनेक आधारों पर मूलाचार पंचास्तिकाय की अपेक्षा प्राचीन है। दूसरे यदि मूलाचार को कुन्दकुन्द के ग्रन्थों का उल्लेख इष्ट होता तो वे समयसार का भी उल्लेख करते है। पुन: कुन्दकुन्द द्वारा 'समय' शब्द का जिस अर्थ में प्रयोग किया गया है, मूलाचार के समयसाराधिकार में 'समय' शब्द उससे भिन्न अर्थ में ग्रहण हुआ है। श्वेताम्बर परम्परा में संग्रहणी सूत्र का उल्लेख उपलब्ध होता है। पंचकल्पमहाभाष्य के अनुसार संग्रहणियों की रचना आचार्य कालक ने की थी। पाक्षिकसूत्र में निर्युक्ति और संग्रहणी दोनों का उल्लेख है। संग्रहणी आगमिक ग्रन्थों का संक्षेप में परिचय देने वाली रचना है। चूँकि आगमों का अस्वाध्याय काल में पढ़ना वर्जित था, अत: यह हो सकता है कि आचार्य कालक आदि की जो संग्रहणी थी, उन्हीं से ग्रन्थकार का तात्पर्य रहा हो। संग्रह से पंचसंग्रह अर्थ ग्रहण करने पर समस्या उठ खड़ी होती है। श्वेताम्बर् पंचसंग्रह जो चन्द्रऋषि की रचना माना जाता है, वह किसी भी स्थिति में ७वीं शताब्दी से पूर्व का नहीं है। दिगम्बर परम्परा का पंचसंग्रह तो और भी परवर्ती ही सिद्ध होता है। उसमें उपलब्ध धवला आदि का कुछ अंश उसे १०वीं-११वीं शती तक ले जाता है। अत: मूलाचार में संग्रह के रूप में जिस ग्रन्थ का उल्लेख है वह ग्रन्थ वर्तमान श्वेताम्बर-दिगम्बर परम्परा का उपलब्ध पंचसंग्रह तो नहीं हो सकता। अन्यथा हमें मूलाचार की तिथि को काफी नीचे ले जाना होगा। गाथा के सन्दर्भ-स्थल को देखते हुए उसे प्रक्षिप्त भी नहीं कहा जा सकता। यद्यपि यह बात निश्चित ही सत्य है कि पंचसंग्रह में जिन ग्रन्थों का संग्रह किया गया है, उनमें कुछ ग्रन्थ शिवशर्मसूरि की रचनाएँ हैं और इस दृष्टि से प्राचीन भी हैं। सम्भव, यही लगता है कि उपलब्ध पंचसंग्रह के पूर्व भी कर्म सिद्धान्त से सम्बन्धित कसायपाहुड, सतक, सित्तरी आदि कुछ ग्रन्थों का एक संग्रह रहा होगा और जो संग्रह नाम से प्रसिद्ध था। हो सकता है कि मूलाचार ने उसी का उल्लेख किया हो। थुदि या स्तुति से मूलाचार का तात्पर्य किस ग्रन्थ से है यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है। टीकाकार वसुनन्दी ने इसका तात्पर्य समन्तभद्र की 'देवागम' नामक स्तुति-रचना से लिया है। किन्तु मेरी दृष्टि में यह उचित नहीं है। प्रथम तो समन्तभद्र का काल भी विवादास्पद है उसे किसी भी स्थिति में मूलाचार का पूर्ववर्ती मानना समुचित नहीं है। वस्तुत: थुई नाम से कोई प्राकृत रचना ही रहनी चाहिए। श्वेताम्बर परम्परा में थुई के नाम से वीरत्थुई और देविन्दत्थुओ इन दो का उल्लेख मिलता है। वीरत्थुई-सूत्रकृतांग का ही एक अध्याय है जबकि देविंदत्थुओं की गणना दस प्रकीर्णकों में की जाती है। वैसे प्रकीर्णकों में ही वीरत्थओ (वीरस्तव) एक स्वतन्त्र ग्रन्थ भी है और इसकी विषयवस्तु सूत्रकृतांग के छठे अध्याय वीरत्थुई से भिन्न है। जैसा कि हमने पूर्व-चर्चा में देखा, मूलाचार की प्रस्तुत गाथा में जिन ग्रन्थों के नामों का उल्लेख है उनमें अधिकतर श्वेताम्बर परम्परा के प्रकीर्णकों के नामों से मिलते हैं। अत: प्रस्तुत: गाथा में थुई नामक ग्रन्थ से तात्पर्य प्रकीर्णकों में समाविष्ट देविदंत्थओ और वीरत्थओ से ही होना चाहिए। यद्यपि मेरी दृष्टि में 'थुदि' से मूलाचार का तात्पर्य या तो सूत्रकृतांग के छठे अध्याय में अन्तर्निहित 'वीरत्थुई' से रहा होगा या फिर देविंदत्थओ नामक प्रकीर्णक से होगा, क्योंकि यह ईसा पूर्व प्रथम शती में रचित एक प्राचीन प्रकीर्णक है। (इस सम्बन्ध में मेरे द्वारा सम्पादित एवं आगम संस्थान द्वारा प्रकाशित 'देविंदत्थओ' की भूमिका देखें)। प्रकीर्णकों में समाहित वीरत्थुओ मुझे मूलाचार की अपेक्षा परवर्ती रचना लगती है। पच्चक्खाण नामक ग्रन्थ से मूलाचार का मन्तव्य क्या है यह भी विचारणीय है। दिगम्बर परम्परा में पच्चक्खाण नामक कोई ग्रन्थ है, ऐसा ज्ञात नहीं होता है। जबकि श्वेताम्बर परम्परा में प्रकीर्णकों के अन्तर्गत आउरपच्चक्खाण और महापच्चक्खाण नामक दो ग्रन्थ हैं। अत: स्पष्ट है कि पच्चक्खाण से मूलाचार का तात्पर्य आउरपच्चक्खाण तथा महापच्चक्खाण नामक ग्रन्थों से ही है। मूलाचार के टीकाकार वसुनन्दी ने इसे स्पष्ट नहीं किया है। केवल इतना ही कहकर छोड़ दिया है कि त्रिविध एवं चतुर्विध परित्याग का प्रतिपादक ग्रन्थ, किन्तु ऐसा कोई ग्रन्थ श्वेताम्बर या दिगम्बर परम्परा में रहा है ऐसा ध्यान में नहीं आता। जब मूलाचार में आउरपच्चक्खाण की ही ७० गाथाएँ मिल रही हैं, इसके अतिरिक्त महापच्चक्खाण की भी गाथाएँ उसमें थीं ही। इससे सिद्ध होता है कि पच्चक्खाण से मूलाचारकार का तात्पर्य आउरपच्चक्खाण और महापच्चक्खाण से ही है।

आवासय या आवश्यक से मूलाचारकार का तात्पर्य किस ग्रन्थ से है—यह भी विचारणीय है! टीकाकार वसुनन्दी ने मात्र केवल इतना निर्देश दिया है कि आवश्यक से तात्पर्य सामायिक आदि षड्-आवश्यक कार्यों का प्रतिपादक ग्रन्थ। दिगम्बर परम्परा में इस प्रकार का कोई ग्रन्थ नहीं रहा है जबकि श्वेताम्बर परम्परा में आवश्यक नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ प्राचीन काल से उपलब्ध है और उसकी गणना ग्रन्थ के रूप में की गई है। अत: स्पष्ट है कि मूलाचारकार का आवश्यक से तात्पर्य श्वेताम्बर परम्परा में मान्य आवश्यक सूत्र से ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तिम ग्रन्थ जिसका इस गाथा में उल्लेख है, वह धर्मकथा है। यह बात निश्चय ही विचारणीय है कि धर्मकथा से ग्रन्थकार का तात्पर्य किस ग्रन्थ से है। दिगम्बर परम्परा में धर्मकथानुयोग के रूप में जो पुराण आदि साहित्य उपलब्ध है, वह किसी भी स्थिति में मूलाचार से पूर्ववर्ती नहीं है। टीकाकार वसुनन्दी ने धर्मकथा से त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र आदि का जो तात्पर्य लिया है वह तब तक ग्राह्य नहीं बन सकता जब तक कि त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र का विवेचन करने वाले मूलाचार से पूर्व के कोई ग्रन्थ हों। यदि हम त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र से सम्बन्धित ग्रन्थों को देखते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ये सभी ग्रन्थ मूलाचार के परवर्ती ही हैं। अत: यह प्रश्न अनुत्तरित ही रहता है कि धर्मकथा से मूलाचार का क्या तात्पर्य है। इसके उत्तर के रूप में हमारे सामने दो विकल्प हैं या तो हम यह मानें कि मूलाचार की रचना के पूर्व भी कुछ चरित ग्रन्थ रहें होगे जो धर्मकथा के नाम से जाने जाते होंगे, किन्तु यह कल्पना अधिक सन्तोषजनक नहीं लगती। दूसरा विकल्प यह हो सकता है कि धर्मकथा से तात्पर्य 'नायधम्मकहा' से तो नहीं। यह सर्वमान्य है कि 'नायधम्मकहा' की विषयवस्तु धर्मकथानुयोग से सम्बन्धित है। इस विकल्प को स्वीकार करने में केवल एक ही कठिनाई है कि कुछ अंग-आगम भी अस्वाध्याय काल में पढ़े जा सकते हैं— यह मानना होगा। एक और विकल्प हो सकता है। धर्मकथा से तात्पर्य कहीं पउमचरिय आदि ग्रन्थ से तो नहीं है लेकिन यह कल्पनाएं ही हैं। मेरी दृष्टि में तो 'धम्मकहा' से मूलाचार का तात्पर्य 'नायधम्मकहा' से होगा। मूलाचार में उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त 'आयारकप्प' और 'जीदकप्प' ऐसे दो ग्रन्थों की और सूचना मिलती है अत: इनके सम्बन्ध में भी विचार कर लेना आवश्यक है । श्वेताम्बर परम्परा में मान्य आगमों में छेद सूत्रों के अन्तर्गत आचारकल्प (दशाश्रुतस्कन्ध=आचारदशा) और जीतकल्प उल्लेख उपलब्ध हैं। यापनीय परम्परा के एक अन्य ग्रन्थ छेदशास्त्र में भी प्रायश्चित्त के सन्दर्भ में आचारकल्प और जीतकल्प का उल्लेख उपलब्ध होता है। यह स्पष्ट है कि आचारकल्प और जीतकल्प मुनि जीवन के आचार नियमों तथा उनसे सम्बन्धित प्रायश्चित्तों का वर्णन करते हैं। पंचाचाराधिकार में तपाचार के सन्दर्भ में जो इन दो ग्रन्थों का उल्लेख है, वे वस्तुत: श्वेताम्बर परम्परा में मान्य आचारदशा और जीतकल्प ही हैं। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि दिगम्बर आचार्यों ने यापनीय परम्परा के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से कहा है कि ये कल्पसूत्र का वाचन करते हैं। स्मरण रहे कि आचारकल्प का आठवाँ अध्ययन पर्युषणाकल्प के नाम से प्रसिद्ध है और पर्युषण पर्व के अवसर पर श्वेताम्बर परम्परा में पढ़ा जाता है।

इस प्रकार देखते हैं कि मूलाचार में जिन ग्रन्थों का निर्देश किया गया है लगभग वे सभी ग्रन्थ आज भी श्वेताम्बर परम्परा में मान्य और प्रचलित हैं। इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि आगमिक ग्रन्थों के सन्दर्भ में मूलाचार की परम्परा श्वेताम्बर परम्परा के निकट है। यापनीयों के सन्दर्भ में यह स्पष्ट है कि वे श्वेताम्बर परम्परा में मान्य आगम साहित्य को मान्य करते थे। यह हम पूर्व में भी सूचित कर चुके हैं कि उत्तर भारत के निर्ग्रन्थ संघ में जिन ग्रन्थों का निर्माण ई० सन् की दूसरी शती तक हुआ था उसके उत्तराधिकारी श्वेताम्बर और यापनीय दोनों ही रहे हैं। अत: मूलाचार में श्वेताम्बर परम्परा में मान्य ग्रन्थों का उल्लेख यही सिद्ध करता है कि वह यापनीय परम्परा का ग्रन्थ है।

**संदर्भ :**

१. मूलाचार (सं० ज्ञानमती माताजी, भारतीय ज्ञानपीठ) भूमिका, पृ०११, साथ ही देखें— डॉ०ज्योतिप्रसाद जैन की प्रधान सम्पादकीय, पृ० ६।
२. विस्तृत चर्चा के लिये देखें— जैन साहित्य और इतिहास पं०नाथूरामजी प्रेमी, संशोधित साहित्यमाला, ठाकुर द्वार बम्बई, १९५६, पृ० ५४८-५५३।
३. आयारजीदकप्पगुणदीवणा अप्पसोधि णिज्झंझा ।
अज्जव-मद्दव-लाघव-वुट्ठी पल्हादणं च गुणा ।।३८७।। मूलाचार
४. आराहणणिज्जुत्ती मरणविभत्ती य संगहत्थुदिओ ।
पच्चक्खाणावासय धम्मकहाओ य एरसिओ ।।२७९।। मूलाचार
५. बावीसं तित्थयरा सामाइयसंजमं उवदिसंति ।
छेओवट्ठावणियं पुण भयवं उसहो उसहो य वीरो य। ७-३६
६. सपडिक्कमणो धम्मो पुरिमस्स य पच्छिमस्स जिणस्स।
अवराहपडिक्कमणं मज्झिमयाणं जिणवराणं ।।६२८।। मूलाचार
७. देखिए, पं०सुखलाल संघवीकृत 'पंचप्रतिक्रमण सूत्र'।
८. 'आवासयणिज्जुत्ती वोच्छामि जहाकमं समासेण।' 'सामाइयणिज्जुत्ती एसा कहिया मए समासेण।' 'चउवीसयणिज्जुत्ती एसा कहिया मए समासेण' आदि।
९. आवासयणिज्जुत्ती एवं कधिदा समासओ विहिणा ।
१०. एसो अज्जाणंपि अ सामाचारो जहाक्खिओ पुव्वं ।
सव्वम्हि अहोरत्ते विभासिदव्वो जधाजोग्गं ।।१८७।।
११. देखिए, कुन्दकुन्द अमृतसंग्रह, गा० २४-२७, पृ०सं०१३५।
— संपा०पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री।
१२. एवं विधाणचरियं चरंति जे साधवो य अज्जाओ ।
जगपुज्जं ते कित्तिं सुहं च लद्धूण सिज्झंति ।।९६।। मूलाचार
१३. आराहणा निज्जुत्ति मरणविभत्तीयं संगहथुदिओ ।
पच्चखाणावासय धम्मकहाओ य एरिसओ ।।२७९।। मूलाचार
१४. आयार जीदकप्प गुण दीवणा..... ।।३८७।। मूलाचार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org